अध्याय - २

असंगत नाटक और हिन्दी नाटककार

प्रकरण – 2

असंगत नाटक और हिंन्दी नाटककार

असंगत नाटक है क्या ?

नाटक समाज जीवन का दर्पण है। समाज में जो कुछ घटित होता है उसी को लेकर नाटक में उसका चित्र दिखाया जाता हे। नाटक को देखकर कुछ लोग आनन्द प्राप्त करते हैं, तो कुछ नाटक को पढकर आनन्द प्राप्त करते हैं। नाटक आनन्द देनेवाला होने के कारण मनुष्य उसकी ओर आकर्षित होता है।

समस्या नाटक इब्सन और शॉं से प्रभावित होकर हिन्दी में लिखे गये। अश्क के "अलग – अलग रास्ते" में वैवाहिक समस्या का उग्र रूप दिखाई पडता है।

द्वितीय विश्वयुध्द के कारण एक नया माहौल तयार हो चुका था। इसी महायुध्द में अनेक लोग मारे गये थे। इसी कारण कुछ लोगों का मत था कि इस युग में न ईश्वर है और ना ही वह लोगों को बचा सकता है। उनका मत है कि स्वयं की रक्षा स्वयं करनी चाहिए। अन्याय अत्याचारों के खिलाफ स्वयं लडना चाहिए। सार्त्र, कामू का ईश्वर पर विश्वास नहीं था। उनका मत है, धार्मिक संस्कार और नीति यह सब बनावटी है। पश्चिम का जीवन के प्रति दृष्टिकोण नकारात्मक दिखाई देता है।

सार्त्र जैसे लेखक का मत था अस्मिता पर किसी प्रकार का घाव नहीं होना चाहिए। तभी वह जीवन सफल बन सकता है। हम देखते हैं चिनी आक्रमण में हम हार गये उसी समय पाकिस्तान ने हम पर आक्रमण किया किन्तु वह लडाई बराबर छूट गयी। इसी में हमारे देश के प्रधानमंत्री की मृत्यू हुई, और कुर्सी के लिए हमारे नेता में एक प्रकार का बुरा माहौल निर्माण

हुआ।यहाँ से विघटन का सिलसिला शुरू हुआ।

द्वितीय विश्वयुध्द के बाद असंगत नाटक लिखने वालों और सफलता प्राप्त करने वालों में सैम्युएल बैकेट, युजीन आयनेस्को, जैने, आर्थर, आदामोव, एडवर्ड आलबी, हैरोल्ड पीटर है।

"बैकेट" के नाटक " गोडो के इंतजार" का इतना मंचन सफल बना कि उनका अन्य नाटककारों पर प्रभाव पड गया। उनका दूसरा नाटक "आखरी खेल" बडा भी असंगत नाटक माना जाता है। इसमें केवल चार ही पात्र है। हैम, क्लोव, मेग और नेल है। लकवा के कारण "हैम" चल फिर नहीं सकता है। वह अन्धा भी है। "नेग" और "नेल" वृध्द है। उनका नौकर क्लोव आज्ञाकारी और कर्मनिष्ठ है। अपनी पुरानी बातों का स्मरण करते हैं और अपना पश्चाताप व्यक्त करते हैं। हैम एक सफल कहानीकार बनना चाहता है किन्तु उसकी इच्छा अंत तक पूरी नहीं होती, इससे वह दु:खी है। हैम का मत है जीवन में सदैव आगे बढ़ना चाहिए। कभी–कभी जीवन में हार भी होती है। अंत में हैम आराम कुर्सी पर विचारों में खो जाता है। प्रस्तुत नाटक में हैम संसकारिक विषयभोग से अतृप्त मन का प्रतीक है। और क्लोव बुध्दि का प्रतीक है।[2]

विष्णुकांत शास्त्री ने कहा है – भोगासक्त पश्चिम की उस मनस्थिति को प्रकट करता है, जो व्यक्तिगत और समष्टिगत किए गए अन्यायों, अत्याचारों के अपराध के बोझ से जर्जर है और भविष्य की आशा खो बैठते है, पश्चिम का असंगत नाटक वहाँ के सामाजिक जीवन की आधुनिक प्रवृत्ति एवं जन्म–मरण के रहस्य को समझने का प्रयास करता है।

<u>युजीन आयनेस्को</u> :–

"रियालिटी इन डेप्थ" में उन्होंने समाज और व्यक्ति के विचारों पर करारा प्रहार किया है। उसका मत है – खामोशी ही जीवन्त यथार्थ है। उसे लच्छेदार भाषा से ढँक देना एक जुर्म है। उन्होंने अपने कृतियों के माध्यम से व्यक्ति और परिवार, परिवार और समाज के बीच रहनेवाले स्थायी विचारों पर भी व्यंग्य किया है।[3]

"द लैसन" में आयनेस्को ने अध्यापक की क्रूर अधिकार भावना और विद्यार्थी की न सोच सकनेवाली दयनीयता पर करारा व्यंग्य कसा है। उनका मत है दिन–ब–दिन भाषा में बदलाव आकर वह अरूचिकर और कठिन होती जा रही है।[3]

एडवड एल्बी – का नाटक "हूज अफ्रेड आव वर्जिनिया वुल्फ" में खिन्नता है जड़ता आदि। द अमेरिका ....., द ज्यू स्टोरी आदि में नैतिक विघटन के स्तरों पर विचार है।

तेपान : अच्छा, यह ठीक है, तो ... क्यों नही लडाई बन्द कर दी जाय ।

जापो – यह कैसा संभव है ?

तेपान – जब कुछ संभव हो सकता है। तुम अपने लोगों से जाकर कह दोगे कि दुश्मन के सिपाही अब लड़ना नहीं चाहते और तुम भी यही मत अपने साथियों से कह देना। बस छुट्टी, सब अपने अपने घर लौट जाएँगे।

जेपो – वाह मजा आ गया ।[4]

यह बातचीत तो उन पात्रों के बीच हो रही है, जो युध्द में पिकनिक मनाने आये है। इससे विश्व की बडो शक्तियों पर करारा व्यंग्य कसा है। जनता सुख चाहती है, वह जीवन अच्छी तरह से जीना चाहती है। उसे शांति चाहिए। आनंद चाहिए। वह निरूत्साही है। वह किसीसे लडना चाहती है और न ही झगडना। बल्कि वे कुछ जीवन का समय अपने लोगों के साथ रहना चाहते है।

<u>आयनेस्को</u> :–

"द-चेयर्स" (1952) यह नाटक वृध्द दम्पत्ति की मधुर स्मृतियों पर आधारित है।

"रायनोसेरोस" नाटक का नायक बेरेंजर एक ऐसी दुनिया में फँस गया है जहाँ हर व्यक्ति एक "गैंडा" है। यह नाटक नाझीवादी प्रवृत्ति पर भी तीखा प्रहार करता है।[5]

<u>पिंटर</u> :-

पिंटर का पहला नाटक "द बर्थ डे पार्टी" तथा 'केयर टेकर' में सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्या पर विचार किया है।[6]

बेकेट के "वेटिंग फॅार गोदो" के लिखे इ.स.1969 में नोबेल पुरुस्कार मिला है। इसमें कथावस्तु चीज नहीं है। एक पेड के पास दो भटकते राही किसी मिस्टर गोदो की राह देखते रहते हैं। उन्हें लगता है वहाँ उसे मिलना है। पहले अंक के अंत में उन्हें बताया जाता है कि गोदो आ नहीं सकते कल आयेंगे। ठीक यही बात दूसरे अंक के अंत में सुनने मिलती है। राहवाश का विचार है कि गोदो के आकर स्थिति सुधार जायेगी। गोदो ही गॅाड है। इस नाटक में राही की प्रतीक्षा महत्वपूर्ण है। मनुष्य राह देखते हुये जीवन बिताता है। इसीका यह प्रतीक भी गोदों के न आनेपर पास के पेडपर लटककर आत्महत्या करनेवाला रहते है। जो ज्ञानवृक्ष, जीवनवृक्ष का प्रतीक है। वहाँ मानव के अस्तित्व की मूलभूत समस्या का आशय इसमें व्यक्त हुआ है।

एब्सर्ड नाटककार, अपने को अकेला समझता है। इसलिए वह व्यक्तिमूलक है। हम आज जो कुछ देख रहे है खोज, परीक्षण, अविष्कार इसे एब्सर्ड नाटककार भ्रामक मानते हैं। उनका मत है मानव अकेला है। एब्सर्ड नाटककार की कृतियाँ न कोई संदेश देती है न कोई नीति सम्बन्धी उपदेश।

इस प्रकार महायुध्द के बाद आयी जीवन की स्थितियों का परिणाम असंगत नाटक है।

हिन्दी नाटकों का विकास भारतेन्दु युग से हुआ है। भारतेन्दु युग में जन सामान्य में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। और दूसरी ओर सामाजिक और धार्मिक, जागरूकता आयी। भारतेन्दु युग के हास्य नाटककारो में देवकीनन्दन त्रिपाठी और पंडित बालकृष्ण भट्ट है। बाद में प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक रहे है। प्रसाद के नाटको में नारी जाति के प्रति असीम श्रध्दा की अभिव्यक्ति हुयी है।

प्रसाद युगीन अन्य नाटककारो में गोविंद वल्लभ पंत, सेठ गोविंददास, माखनलाल चतुर्वेदी हैं, जिन्होंने पौराणिक और सामाजिक नाटक लिखे हैं। प्रसाद का "कामना" और पंत का "ज्योत्स्ना" हिंदी के प्रतीकात्मक नाटक हैं। "कामना" में संतोष, विनोद और कामना आदि भावनाओं का मानवीकरण किया गया है। प्रसाद का "करूणालय" गीतिनाट्य है। उदयशंकर भट के राधा, विश्वामित्र, मत्स्यगंधा, मेघदूत सफल गीति नाटक हैं। उदय शंकर भट्टजी के "विश्वमित्र" में पुरूष और नारी का संघर्ष है जो आदिकाल से चला आ रहा है।

नवीन युग की अपूर्व उपलब्धि वैज्ञानिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुए व्यक्तिवाद का प्रभाव साठोत्तरी नाटकों में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। सामाजिक नाटकों में समाज, परम्परा, स्त्री पुरूष सम्बन्ध, अर्थ एवं संस्कृति के प्रति व्यक्त विचारों में स्पष्ट से नवीनता के दर्शन होते है।[7] वैज्ञानिक विकास के साथ जीवन की यांत्रिकता और संबंधहीनता में इधर जो वृध्दि हुई है उसके परिणाम स्वरूप पारिवारिक विघटन, असंतोष, स्नेहहीनता, और संबंधों की भयावहता बढी हैं।

साठ्ठोत्तरी हिन्दी नाटक में प्रतीकात्मकता की प्रवृत्ति प्रायः प्रमुख है। प्रतीकात्मकता नाटकों में मानव जीवन की समग्रता परिलक्षित होती है। पश्चिम में प्रतीक परम्परा के नाट्कों का प्रारंभ करनेवाले इब्सन है। भारतीय इतिहास में प्रतीक नाटकों का अभ्युदय संस्कृत नाटकों के विकास से जुडा।[8] हिन्दी नाटकों में प्रतीकात्मकता का स्वर भारतेन्दु युग से ही परिलक्षित होता है।

Absord drama को हिंदी में असंगत नाटक कहा जाता है। एब्सर्ड के कई अर्थ हैं – अनर्थक, अर्थहीन, विसंगत, तर्कहीन, असंगत मुर्खतापूर्ण आदि।[9] मानक हिंदी कोश के प्रथम खंड में "असंगत " शब्द के अर्थ निम्न है –

1. जो किसी से मिला, लगया जया सटा न हो।
2. जिसकी किसी से संगति या मेल न बैठता हो।
3. जो प्रस्तुत विषय के विचार उपयुक्त न हो।[10]

मानक हिंदी कोश के पाँचवे खंड में "विसंगत" शब्द के अर्थ –

1. जिसमें संयत गति न हो।

2. जिसके साथ संगति न बैठती हो। बे – मेल ।[11]

हिन्दी नाटक में असंगत नाटक का आरम्भ भुवनेश्वर प्रसाद के "कारवाँ" और "ऊसर" तथा "तांबे के कीडे" से होता है।[12] "तांबे के कीडे" को पहला असंगत नाट्य परम्परा का प्रतीक नाटक माना जाता है। भवुनेश्वर प्रसाद के बाद असंगत नाट्य परंपरा को आगे बढ़ाने का काम डॉ.बिपिन अग्रवाल ने किया। ... "तीन अपाहिज" और "लोटन" का स्थान महत्वपूर्ण है। इसी परम्परा को चार चाँद लगाने में सहाय्यता मिली उनमें डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा, मणि मधुकर, डॉ.रमेश बक्षी, हमीदुल्ला, रामेश्वर प्रेम आदि। भुवनेश्वर के नाटकों में कुण्ठा निराशा चिडचिडापन नजर आता है।

द्वितीय विश्वयुध्द के बाद पाश्चात्य साहित्य में असंगत नाट्य परम्परा का उदय हुआ। इसी युध्द ने सारे समाज जीवन पर नैराश्य फैलाया। जिस विज्ञान ने मानव को श्रेष्ठ बनाया था उसी ने सारे मानव जीवन को उध्वस्त किया। असंग नाटक में न कथानक है, न नायक, न निश्चित मूल्य । असंगत नाटककार बुध्दि और तर्क का विरोध करता है।

असंगत नाटक में मूल्यहीनता नजर आती है। जीवन में अनिश्चितता और अर्थहीनता को ही असंगत नाटककार जीवन का सत्य मानता है। मनुष्य के भीतर कुछ न कुछ दु:ख अवश्य होता है। किन्तु वह बाहर से सुखी, आनंदी दिखाने का प्रयत्न करता है। असंगत नाटक का आधार भी यही है। मनुष्य अपनी पीडा करूणा को स्वंय हँसते–हँसते झेलता है। नाटक को सफलता तभी मिलती है, या नाटक व्यक्ति को उसी समय आकर्षित करता है। जब उसमें आम आदमी के जीवन का चित्रण हो, लेकिन असंगत नाटककार उसे स्वीकारने में हिचकते हैं, उसका विरोध तिरस्कार करते है। असंगत नाटककारों का मत है यदि मनुष्य आदिम प्रवृत्तियों से जीता है तो वह मनुष्यत्व खो बैठता है। अगर वह बुध्दि का उपयोग करता है तो वह जीवन की कार्य

पध्दतियाँ सार हीन होती है। ऐसी उलझनों में फँसे मानव मन ने जीव नाटकों का निर्माण किया उसे एब्सर्ड या विसंगति का नाटक कहते है।[13]

यह प्रश्न उठाया जाता है कि असंगत नाटक में युरोपीय जीवन प्रणाली वहाँ के परिवेश का प्रभाव अधिक दिखायी देता है। लोग यह प्रश्न उठाते हैं, हमारे देश की संस्कृति और उनकी संस्कृति में काफी अंतर है, हम क्यों विदेशी संवेदनाओं को ग्रहण करें? सत्यव्रती सिन्हा ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि विज्ञान की अविष्कृति किसी की पौती बह रह जाती। उसी प्रकार एक कला रूप या चिंतन की एक पध्दति किसी एक प्रवर्तक की बपौती नहीं रह जाती है। जिस क्षण जो जो आविष्कृत होता है उसी क्षण वह एक अखिल मानव की संपत्ति बन जाता है। नृशास्त्री चाहे कितनी ही कार्य और दोष की मीमांसा करें, वे यह मानते है कि सम्पूर्ण मानवीयता एक है। इसलिए प्रत्येक रचनाकार सार्वभौमिकता की बात करता है।[14]

हम अँग्रेजों के गुलाम थे। इसे भी नहीं भूला जाता। हमने अँग्रेजों की लम्बी गुलामी के दर्द को भोगा है। किन्तु अन्तरिक यथार्थ कि स्थिति के बारे में देखा जाय तो हम अविश्वास कि चक्की में पिसते ओर एक साथ रह नहीं सकते।[15] हम अपना ईमान, सच्चाई को निटाकर बुराईयों को स्वीकार कर रहे हैं। नेता हमारे ही लोगों का खून चूसते हैं। भ्रष्टाचार, राजनीति के कारण व्यक्ति मनुष्य की तरह व्यवहार नहीं कर रहा है। आज इसी विसंगति में मानव अपना जीवन जी रहा है। हमारी विसंगति और विदेशी रचनाकारों में अन्तर सिर्फ परिवेश का है।

असंगत नाटक में परम्परागत नाटक का तिरस्कार किया है। कोई भी नाटककार की कृति तभी सफल बनती है जिसमें अपना अनुभव, जो वह जीवन में देखता है, उसीका चित्रण करता है, और जिसमें मनुष्य के दु:ख की व्याप्ति अधिक होती है वह नाटक अच्छा सफल बनता है। यह देश, यह समाज जितना बाहर से क्रमबध्द और संतुलित दिखाई देता है भीतर से वह उतना ही असंतुलित है। व्यक्ति की सामाजिक परिवेश में जितना मर्यादित, शिष्टाचार आदि के बंधनों से नियमित होता हे, उतना ही भीतर से असमान्य होता है।

सामाजिक क्षेत्र में मनुष्य को महँगाई, बेरोजगारी, आर्थिक वैषम्य, स्त्री–पुरूष के बदलते संबंध, मशीनी जिंदगी, यांत्रिक ज़िंदगी के कारण व्यक्ति में कुण्ठा निराशा, तनाव आ गया है। उससे यह स्पष्ट है कि भारतीय जन–जीवन की परिस्थितियाँ भी असंगत नाटकों के अनुकूल थी।[16]

मुंद्राद्वय ने अपने "ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर" मे असंगत नाटकों की विशेषताएँ दी है।[17]

1. मानव जीवन अनिवार्यता अर्थही है अतः वह घृणास्पद है।
2. मानव के प्रयासों का हमेशा फल प्राप्त होगा ही ऐसी बात नहीं, अतः वह नैराश्यपूर्ण है ।
3. वास्तवता तब तक अस्वीकार्य है, जब तक वह स्वप्न और इंद्रजाल से मुक्त नहीं है।
4. मनुष्य मृत्यू के अधीन रहता है, जो हमेशा स्वप्नों और इंद्रजालों को स्थानांतरित करता रहता है।
5. असंगत नाटको में प्रायः अर्थपूर्ण कार्य व्यापार और कथावस्तु का अभाव होता है। जो कुछ थोडा बहुत घटित होता भी है वह अर्थपूर्ण नहीं हो सकता।
6. अंतिम स्थिति असंगत या हास्यास्पद होती है।
7. असंगत नाटक उद्देश्यपूर्ण नहीं होता और समस्या नाटक की भाँति निश्चिय बोध भी नहीं होता।

डॉ.जयदेव तनेजा के असंगत नाटक के बारे में लिखा है। इन नाटकों का कथानक तक तारतम्य युक्त नहीं होता। संरचना सीधी रेखा में न होकर वृत्ताकार होती है। चरित्रों में भी विकास या बदलाव की कोई संभावना नहीं होती। उपदेशपरक उद्देश्य के बजाय नाटककार जीवन के खोखलेपन, अकेलेपन, अब, अलगाव और अर्थहीनता का विसंगत दृश्यांकन भर करता हे।"[18]

असंगत नाटक मानव की दुःखद और असहाय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए आंतरिक यथार्थ को अधिक स्पष्ट करता है। नाटक में स्त्री पुरूष के सम्बन्ध का खुलकर विचार किया है। इसमें त्रासदी को उभारना इसका प्रमुख उद्देश्य है। इसमें नाटककार की बौध्दिक प्रतिभा का दर्शन अधिक रहता है।

असंगत नाटक और मनोविज्ञान :-

साहित्य का संबंध मन से रहा है। बीसवीं शताब्दी की ज्ञान की मनोविज्ञान यह नयी शाखा है। यह शाखा अन्य शाखाओं से कुछ लेती भी है और उन्हें देती भी है। इसमें जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को हल करने की शक्ति है। फिर वह विश्वयुध्द की समस्या हो, या पारिवारिक जीवन से संबंधित हो। सबको समान स्थान देने का प्रयत्न करती है।

मनोविज्ञान के आरम्भ में मन का विज्ञान माना जाता था। बींसवी शताब्दी में यह परिभाषा बदल गयी। मनोविज्ञान के अंतर्गत मन की विविध क्रियाओं तथा शक्तियों और मनुष्य स्वभाव एवं कार्यों की मूल प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का अध्ययन किया गया है। इसलिए आज इसे व्यवहार का विज्ञान भी कहा जाता है।

एडलर के अनुसार प्रभुत्व पाने की मौलिक इच्छा हर व्यक्ति में होती है। यदि कोई व्यक्ति किसी बात में अपने को हीन समझता है तो वह किसी न किसी प्रकार की प्रतिपूर्ति या क्षतिपूर्ति करके इस भावना से अपनी रक्षा करता है।[19]

तिलचट्टा में केशी और तेंदुआ में रेनु राय और मिसेज मदान अन्य पुरूषों से संबंध स्थापित कर, या यातनाएँ देकर यौन कुंठाओं की क्षतिपूर्ति करती हुए दिखाई देती है।

मनुष्य का मनोविज्ञान सरल नहीं है। मनुष्य का मन जटिल है, उस पर बहुत सारे बोझ रहते हैं जैसे जैसे युग बदलते हैं उसी प्रकार हमारे जीवन, मानसिक प्रक्रिया, और रूचि में बदलाव आ गया है। मनुष्य को जीवन जीवने के लिए कठिन परिस्थितियों का सामना करना पडता है। यह सामना करते-करते वह अपने को टूटा हुआ महसूस करता है। मनुष्य अपने अकेलेपन, बेरोजगारी, शोषण आदिके कारण अंदर ही अंदर टूट गया है।

द्वितीय विश्वयुध्द के बाद मानव के जीवन में बदलाव आकर वैज्ञानिक प्रगति के कारण मूल्य विघटन हुआ। इसी कारण मनुष्य में प्रेम की कमी नजर आती गयी। जो प्रेम दूसरों को दिया जाता है, वह लुप्त हो गया। भाई–भाई में प्रेम नष्ट हों गया है। और अपनी रक्षा के लिए वह मूल्यहीन आचरण करने लगा। उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करने लगा ऐसे उच्च वर्ग की नारीयों में कामुकता और हृदयहीनता नजर आ गयी।

पति–पत्नी के बीच में भी बदलाव आया। पति पति की तरह, पत्नी पत्नी की तरह जीवन जीने में असमर्थ है। पत्नी अपने पति को हाथ में रखती है। वह जो चाहता है, उसी तरह पति भी जीवन जीता है। कभी कभी पति अपनी पत्नी को मारता है। तो कभी पत्नी अपने प्रेमी के साथ भागकर चली जाती है, तो कभी अन्य गैर पुरूष से संबंध रखती है। इससे बच्चों पर बुरा प्रभाव पडता है। और बच्चे भी बुरे रास्तों परी चलते हैं। वे अपने जीवन में कुछ बनने से पहले ही उनका जीवन उध्दवस्त होता है।[20]

मनुष्य कम श्रम में अधिक सुख प्राप्त करने में डटा हुआ है। वह असंगत परिवेश में उलझकर अपना आत्मविश्वास खो बैठा है।[21] मनुष्य हिंसक बनता जा रहा है। मनुष्य जैसा जीवन व्यतीत करता है, उसी का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से साहित्य में चित्रित किया जाता है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है।

डॉ.नरनारायण राय के अनुसार – "मनोविज्ञान के बढते हुए विश्लेषण ने व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों का अध्ययन कर यह स्पष्ट कर दिया है कि हर व्यक्ति अपने जीवन व्यवहार में कहीं असामान्य होता है ओर उसके व्यवहारों एवं आचरणों में संगति नहीं होती।[22]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है मनुष्य के जीवन में जो असंगति है उसके पीछे कुछ न कुछ मनोवैज्ञानिक कारण आवश्य होगा।

असंगत नाटक की विशेषताएँ :-

कथ्य :-

असंगत नाटक में कथानक की ओर अधिक ध्यान नहीं होता। असंगत नाटकों का कथानक बड़ा सूक्ष्म होता है। असंगत नाटकों में कथानक का कोई महत्व नहीं होता। असंगत नाटक में क्रमबध्दता होती है, और कथानक जहाँ से प्रारम्भ होता है वहीं समाप्त होता है। असंगत नाटक के कथानक में बिखराव होता है। असंगत नाटक मानवीय जीवन की भयानकता को अभिव्यक्त करते हैं। यह नाटक स्त्री–पुरूष संबंधों पर विचार व्यक्त कर भ्रष्टाचार पर विचार करने के लिए बाध्य करता है। आज का व्यक्ति बाहर से व्यवस्थित दिखाई देता है किन्तु अंदर से वह टूटा–फूटा, कुण्ठा, निराशा से तंग आ चुका है।

आज हम देखते हैं आज की शिक्षा प्रणाली केवल डिग्रीधारी युवकों की संख्या में बढोतरी करती है। उनके लिए रोजगार नहीं मिलता। वह बुध्दिजीवी होने पर भी वह दो वक्त की रोटी तक प्राप्त करने में असमर्थ है। इसी की ओर भी यह नाटक ध्यान खिंचता है।

डॉ. चन्द्र असंगत नाटकों के कथ्य के बारे में लिखते हैं – "असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को अधिक व्यक्त करते हैं। इनमें परम्परागत मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है। जीवन की विद्रूपता और विकृतियों को ये अपना आधार बनाते हैं। इनमें बेहूदे और अनर्गल कार्य का चित्रण अधिक रहता है। काम के विकृत रूपों की अभिव्यक्ति अतिरंजकता के साथ की जाती है। असंगत नाटक प्रतीकों के माध्यम से जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को चित्रित करते हैं। भय, चिन्ता, निराशा और संत्रास को इनमें अधिक महत्व दिया जाता है। इनके वर्णन हास्यप्रधान और अतिशयोक्तिपूर्ण होते हैं। ये नाटक अधिक विद्रोह में न जाकर, व्यक्ति की निस्सहाय, निरूद्देश्य और अर्थहीन स्थिति को चित्रित करते हैं। इनमें क्रूरता और बीभत्सता अधिक रहती है। ऊपर से ये हल्के किस्म के दिखाई पडते हैं, क्योंकि इनमें व्यंग्स से परिहास को अधिक महत्व दिया जाता हैं, पर इनका अन्त पक्ष बड़ा गहरा होता है। इनका हास्य करूणा – केंद्रित होता है। ये अस्तित्व की पीड़ा को हराकर भुला देना चाहते हैं।"[23]

इस प्रकार इन नाटकों का कथ्य मानव नियति की त्रासदी को चित्रित करना है। कथानक की सुसूत्रता न रहने से ये नाटक अलग दिखायी देते हैं।

चरित्र :-

परम्परागत नाटकों की तरह असंगत नाटकों में चरित्रों का विकास नहीं दिखाई देता। परम्परागत नाटकों में नायक, खलनायक होते है किन्तु असंगत नाटकों में इसका अभाव होता है। असंगत नाटकों में बीमार, ऊबे, लम्पट, थके हारे चरित्र अधिकतर दिखाई देते हैं। इनके पात्र आधा चरित्र और आधा फॅटसी होते हैं। असंगत नाटकों के पात्रों में दु:ख अधिक तीव्र होता है। वे सदैव हताश और नाखुश रहते हैं। पात्र दूसरों को दु:ख देने में अत्याधिक आनंद मानते है। असंगत नाटकों के पात्रों की जितनी प्रशंसा की जाती है वे उतने ही अधिक आनंदित होते है। उनके जीवन में कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य होते है और न ही अपने जीवन में कुछ उद्देश्य रखते हैं। उनका अपना जीवन निरर्थक और दिशाहीन होता है। स्त्री–पुरूष का संबंध, केवल नाममात्र है। ये चरित्र अपनी दरिद्रता और परेशानी के कारण अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं। इसलिए वे अपनी जिंदगी को समाप्त करना चाहते हैं।

डॉ.अज्ञात ने असंगत नाटकों के चरित्र के बारे में कहा है – "इसमें ऐसे पात्रों का प्राधान्य है, जो आत्म–पीडित नियति के दारूण व्यंग से परिताप तथा जीवन के परस्पर विरोधी मूल्यों के बीच द्विग्भ्रमित रहते हैं। ये पात्र दिन–प्रतिदिन के व्यवहार के पारस्परिक वार्तालाप को असंगत एवं अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह उपहासास्पद लगे, किन्तु उससे जीवन के किसी नग्न सत्य का उद्घाटन हो।"[24]

प्रस्तुत विचारों से यह स्पष्ट होता है कि असंगत नाटकों के पात्र ऊलजलूल होते हैं। विशिष्ट गुणों को लेकर नहीं आते जैसे परंपरागत नाट्य सृष्टि में मिलते हैं।

संवाद और भाषा :-

असंगत नाटककारों की दृष्टि से संवाद और भाषा का कोई महत्व नहीं है। उनका मत है, जिस तरह विश्व में अनेक प्रकार का बदलाव नजर आता है उसी तरह भाषा भी निश्चित नहीं है। असंगत नाटककारों का भाषा पर विश्वास नहीं है। इसमें रोजमर्रा की भाषा का अधिक प्रयोग नजर आता है। पात्र कुछ बोलते नहीं, वे अपनी हावभाव के द्वारा ही अपने विचार व्यक्त करते हैं।

असंगत नाटककारों का मत है कि परम्परागत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को स्पष्ट करने में असफलत होने के कारण प्रतीकात्मक और सांकेतिक, हरकन की भाषा को अपनाते हैं।

कमलेश्वर के अनुसार – "असंगत नाटक के पात्र उपराम है, जिनके बीच में भाषा का केंद्र टूट चूका है। नाटकों में भाषा का इस्तेमाल नहीं, शब्द के नाद और स्वरों का इस्तेमाल है, जो दर्शक को परम्परागत संज्ञा से शून्य करने का काम करती हैं।[25]

परम्परागत नाटकों में संवादों का जितना महत्व होता है, उतना असंगत नाटकों में नहीं संवादों के द्वारा परम्परागत नाटक में पात्रों का विकास होता है। किन्तु असंगत, में समय गुजारने के लिए संवादों का ध्यान होता है। मनुष्य के जीवन की विकृति, विसंगति, विद्रूपता को व्यक्त करने के लिए, बेतुके, उलजलूल संवादों का प्रयोग किया है।

रंगमंच :-

रंगमंच का उद्भव ही नाटक से हुआ। नाटक रंगमंच पर ही खेले जाते हैं।

प्रो. सिंधु ज्ञानेश्वर भिंगारकर ने लिखा है – "नाटक का विशेष गुण है आनन्द प्रदान करना। इसी से नाटक केवल साहित्य की वस्तु नहीं रह सकती। नाटक देखने की चीज है। नाटक और नाट्यकला एक दूसरे के अविभिन्न अंग है। नाटककार की सफलता उसी में है कि उसका नाटक रंगमंच पर अच्छी तरह से अभिनित हो सके। "

असंगत नाटकों का मंच उलजलूल है। मंच सज्जा अत्यंत सामान्य और असम्बध्द है। इनके मंच प्रतीकात्मक ओर उलजलूल हैं। इनमें मूल अभिनय को प्रमुखता दी गयी है। असंगत नाटक एक ही दृश्यबंध पर नाटक खेला जाता है। मंच पर जितनी भी वस्तुएँ हैं वह किसी न किसी अर्थ से जुडी होती है। इनमे ध्वनि प्रकाश योजना का प्रतीकात्मक प्रयोग किया हुआ नजर आता है।

रंगमंच एक विज्ञान विज्ञान ने रंगमंच को प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित सीमाओं को तोडकर उसे पुन: चल–चित्र की–सी यथार्थता और व्यापकता प्रदान कर दी है। किन्तु असंगत नाटककारों का परम्परागत रंगमंच–सज्जा पर विश्वास नहीं है।

डॉ.रामसेवक सिंह ने पात्रों के क्रिया–कलापों के बारे में अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखा है – ""ड्रामा" शब्द का अर्थ मूल ग्रीक भाषा में "मैं कुछ करता हूँ" होता है इसलिए एब्सर्ड नाट्यकार हमेशा अपने चरित्रों को सक्रिय रखते हैं। परिणाम यह होता है कि दर्शकों की आँखों के समक्ष कुछ न कुछ घटित होता रहता है। ये नाट्यकार भय, चिन्ता और त्रास जैसे अनुभवों को भी रंगमंच पर उपस्थित करने का प्रयत्न करते है।"[26]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है परम्परागत नाटक और असंगत नाटक में काफी अंतर है। इसके कारण ये नाटक परंपरागत नाटक से भिन्न है। क्या कथा, क्या पात्र, क्या भाषा सभी दृष्टियों से अलग हैं।

<u>उद्देश्य</u> :–

नाटक किसी न किसी उद्देश्य के लिए लिखा जाता है। मनुष्य अपने विविध प्रकार के क्षेत्रों में असंगतियों को देखकर अत्यंत निराश हुआ है। उसी असंगति को यथार्थ रूप में उभारना प्रमुख उद्देश्य है। आज मनुष्य अनेक समस्याओं से घिरा है। जिसके कारण वह अपना जीवन व्यतित करने में उसे अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड रहा है। नाटककारों का मुख्य उद्देश्य

व्यक्ति में जो निराशा, कुण्ठा, संत्रास, ऊब, टूटन दिखाई देती है ऊन पर विचार करने के लिए बाध्य करना।

इन नाटकों में न विशिष्ट कथावस्तु होती है न उसका विकास। इसमें न पात्र होते हैं जसे पंरपरागत नाटकों में रहते है। इसके पात्र सामान्य होते हैं। जीवन की किसी समस्याओं में निरर्थक बने जीवन को गुजारनेवाले अपनी ऊब, टूटन को व्यक्त करनेवाले होते हैं। पाश्चात्य नाट्य साहित्य में ये धारः उभरकर आयी उसका संक्षप में परिचय लिखा है। उसी तरह अपने यहाँ की जीवन की निराशा, कुण्ठा, संत्रास चित्रित किया गया है। यह इन नाटकों की विशेषता है।

हिंदी के जिन नाटककारों ने इस परंपरा से नाटकों का सृजन किया है उसका परिचय लेंगे।

हिंदी के असंगत नाटक और नाटककार :-

1. **भुवनेश्वर प्रसाद** :-

मनुष्य प्रयोगशील प्राणी। आधुनिक हिंदी नाटक में रंगमंच की दृष्टि से कथ्य, शिल्प तथा नवीनतम मोड देने में भुवनेश्वर का स्थान महत्वपूर्ण है। भुवनेश्वर प्रसाद ने "कारवाँ" तथा अन्य एकांकी में संकलित "ऊसर"तथा "तांबे के कीडे" में कथ्य और शिल्प में परम्परागत ढाँचे को तोडने का महत्वपूर्ण और उल्लेखानीय कार्य किया है। उनका यह कार्य कथ्य, शिल्प तथा रंगमंच की दृष्टि से उदयकाल ही है। कथ्य, शिल्प रंगमंच को नयी दिशा, नयी गति देने में उनका स्थान महत्वपूर्ण है।

इ.स.1930 और 40 के बीच लिखे गये भुवनेश्वर "कारवाँ" तथा अन्य एकांकी में "ऊसर" तथा "तांबे के कीडे" इसे असंगत नाटक का प्रारंभ होता है।

उनका "ऊसर" नाटक (1938) कथाविहीन है। जिसमें जीवन के खोखलेपन, और जीवन के अकेलेपन को व्यक्त किया गया है।[27] ऊसर के पात्रों में एक दूसरे से कोई संबंध नहीं रखते। इसमें लड़का गृहस्वामी, टयूटर, युवक, मोटी रमणी, गृहस्वामिनी, लडकियाँ आदि हैं।प्रस्तुत

नाटक का रूपबंध उद्देश्य नता को व्यक्त करता है। मंच पर दीवारों पर कीले गाड़ने के निशान, पुराने और मैले परद और भद्दे फर्निचर तथा नंगी बेंत की कुर्सी है।[28] भुवनेश्वर की "स्ट्राईक" नामक एकांकी भी स्त्री–पुरूषों के वैवाहिक सम्बन्धों पर आधारित है।

"तांबे के कीडे" भुवनेश्वर का असंगत नाट्य शिल्प का सशक्त और उल्लेखनीय प्रयोग है। "तांबे के कीडे" कथाविहीन नाटक है। इसमें न पात्रों का चित्रण है और न ही कथा का। "तांबे के कीडे" की तिलचिलाहट, आदमी की बैचेनी, उलझन, अकेलापन, तनावपूर्ण वातावरण, शिल्प का नयापन, आक्रमक चित्र, एब्सर्ड नाट्य परंपरा का सशक्त उदाहरण है। परंपरागत नाटक की तरह इसमें न कथा है और न कथा–विकास। पात्रों की आपस में कोई संगति नहीं है। "मंच पर केवल एक ही पात्र है – लडकी, जो अनाउंसर है, वह हाथ में झुनझुना लिये बजाती है। शेष सभी पात्र रिक्शावाला, अफसर, मसरूफ, पति, परेशान रमणी, पागल आया, निर्मला जो अपने नेपथ्य स्वर में ही अपनी उपस्थिति और ट्रेजेडी का आभास कराते हैं।"[21]

"तांबे के कीडे" परम्परागत नाट्य शैली से सर्वथा भिन्न है। यह नाटक समाज की पीडा को, भयावह करूणा, आक्रमकता, विघटन आदि को व्यक्त करता है। उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है "तांबे की कीडे" प्रयोग की दृष्टि से नयी परंपरा निर्माण करनेवाला है।

2. <u>बिपिनकुमार अग्रवाल</u> :–

"लौटन" में विपिनकुमार अग्रवाल ने आज के औद्योगिकरण के कारण समाज पर बुरा असर पड़ गया है, इस पर प्रकाश डाला है, आज व्यक्ति की समस्या व्यक्ति के विवेक को समाप्त कर दिया है। आज मानव अपना खोया हुआ अस्तित्व प्राप्त करने में जुटा हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में भुवनेश्वर के बाद बिपिनकुमार का स्थान मंहत्वपूर्ण है। उनके "तीन अपाहिज", "लौटन", "खोए हुए आदमी की खोज," नाटकों से विसंगति के नाटकों की धारा पुष्ट होती है। "तीन अपाहिज" नाट्यसंग्रह है जिनमें स्वतंत्रता के बाद समाज में उत्पन्न राजनैतिक, सामाजिक, परिस्थितियों का तथा भ्रष्टाचार आदि से मानव जीवन में मची उथल – पुथल को रेखांकित करता है। अन्य नाटक रेल कब आएगी, उलथ सीधा स्वेटर, एक स्थिति,

कूडे का पीपा, ऊँची–नीची टॅंगो का जॅंघिया[30] आदि नाटक है। असंगत नाटक कि श्रेणी में आते हैं।

ऊँची–नीची टॅंग की जॅंघिया में अवसरवादिता, राजनीतिक भ्रष्टाचार पर व्यंग्य कसा है।[31]

उत्तर का प्रश्न, रेल कब आएगी, उल्टा सीधा स्वेटर, इसमें रेल विभागी निष्क्रीयता, तथा दिशाहीन युवा पिढी का उजागर किया है।

लोटन :–

लोटन (1975) यह तीन अंको वाला लघु नाटक नाटक है।[32] जो असंगत नाटक में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लोटन नाटक की जमीन भी विसंगत नाटक की है। नाटक में नाटककार ने वैज्ञानिक युग क अभिशाप का सामने लान की कोशिश की है। [33] प्रस्तुत नाटक में डाकगाडी जन–आंदोलन का प्रतीक है। लोटन अकाल पीडित क्षेत्र से आया है। औद्योगिकरण के बीच मनुष्य किस तरह चारों ओर व्याप्त असंगतियों से घिरा हुआ है, और उसी स्थिति में जीने के लिए विवश हे, यही नाटककार कहना चाहता है। पटरी से उतरकर इधर–उधर भागती डाकगाडी, नाना बोझ ढोती जिन्दगीका प्रतीक है, नाना समस्याओं में मनुष्य के विवेक को नष्ट कर दिया है। डाकगाडी, पटरी से उतरकर जनता में भय आतंक फैला देती है। इधर–उधर भागती डाकगाडी और निरर्थक कोशिश करनेवाला मनुष्य दोनों में कोई फर्क नजर नहीं आता है। यहाँ प्रतीकों का अधिक प्रयोग नजर आता है किन्तु ये सारे प्रतीक भोंडे लगते है।[34]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है, कि मनुष्य का जीवन यांत्रिकता से ग्रस्त है, भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है।

3. **डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा :-**

नयी कविता के प्रतिभाशाली कवि और नाटककार लक्ष्मीकांत वर्मा का "अपना अपना जूता", "आदमी का जहर" लघु नाट्य लिखे हैं। 'रोशनी एक नदी है' (1974) यह वर्माजी का असंगत नाट्य शैली में लिखा महत्वपूर्ण नाटक है। जिसमें आज के जीवन में व्याप्त विसंगतियों का चित्रण किया है। नाटककार का मत है, किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करना, उस तक पहुँचना सम्भव नहीं, फिर भी गतिशील रहना सम्भव है। नाटककार ने इसमें जीवन की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है, जैसे घर-परिवार, समाज-धर्म, राजनीती। पूरे नाटक में भीड, शोर और उसके बीच पीसती मनुष्य की नियति ही मुख्य है। पूरा नाटक एक ही अंक में समाप्त होता है।[35] इसमें दश्य परिवर्तन प्रकाश योजना के दुवारा किया गया है।

4. **काशिनाथसिंह :-**

काशिनाथसिंह का घोसास (1967) जो पहाडी क्षेत्र के आसपास के कस्बे का चित्र चित्रित किया है। इस कस्बे के पास एक डेरा है, जिसमें कुछ लोग रहते है। जो अपनी जीविका को चलाने के लिऐ मछलियाँ खाकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यहाँ के लोगों के जीवन में नैराश्यान्धकार छाया हुआ है। पासी, बीसा, मास्या, पूजी, तथा नानी ये सब किसी न किसी समस्याओं से घिरे हैं।

यहाँ कोई अपने हित के लिए दूसरों का इस्तमाल करता है, जिसका इस्तेमाल करता है वह यह जानता तक नहीं है। इसमें कथानक का अभाव है। संवादों में गतिशीलता नहीं है। नाटक बहुत स्लो चलता है, और दर्शकों को ऊब भी सकता है।[36]

5. **मणि मधुकर :-**

मणि मधुकर का "रससंघर्व" असंगत नाटको में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें एक अप्सरा और पाँच गन्धर्व इन्द्र के शाप से मनुष्य का देह धारण कर मृत्यूलोक में नरक यातना भोग रहे हैं। अप्सरा राजा भोज की पुत्री है और पाँचों गन्धर्व राजा भोज के यहाँ बन्दी है। नाटक

इन्ही छ पात्रो पर आधारित है।[32] इनमें पाँच गंधर्व अ. ब. स. द. और ह. है। ये पात्र राजा भोज की प्रजा है।[38] "अ" जादूगर है, "ब" राजगीर है, "स" दर्जी है, "द" बढाई, के रूप में वर्तमान जीवन की विसंगतियों को व्यंग्य रूप में उद्घारित करते हैं। असंगत नाटकों की तरह इसमें भी कथानक नहीं और न ही कथानक का विकास। यह नाटक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से महत्व रखता है। और राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक, साहित्यिक, विसंगतियों के जाल में घिरे मनुष्य की परिस्थिति या जिंदगी को चित्रित करता है। ओर प्राप्त वातावरण में घुटते मनुष्य का सजीव व प्रभावशाली अंकन करता है।

पात्र प्रतीकात्मक काल्पनिक और यथार्थवादीं धरातल पर अभिव्यक्त होते हुए कथा को फैंटसी के स्तर पर आगे बढाने में स्वयं नाटककार नाटक में राजकवि, सूत्रधार, अफसर आदि रूपों में नजर आता है। एक ही युवती एक साथ छः रूपों में धाराकी, राजकुमारी, पुतली, नारी, राजसत्ता, अप्सरा वही अभिनय करती है।[39]

नाटक के संवाद हास्य व्यंग्य और लोकतत्व से परिपूर्ण है। और कहीं पर तीखा व्यंग्य है। पात्र परिचय की दृष्टि से देखा जाय तो इस पर "एब्सर्ड नाटक" और बेस्टन की शैली का प्रभाव दिखाइ देता है। आदमी की विडम्बना को व्यंग्यत्मकता से प्रस्तुत करते है । निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है –

ब : संतरीजी तुम काहे को गन्दगी की फिक्र करते हो? गन्दगी तो हमारे खून मे है।

स : उससे कभी मुक्ति नहीं मिल सकता।

द : यहाँ छिपकलियाँ है और पिस्सू भी।

संतरी : मुझे अपने कार्यक्षेत्र में स्वच्छता रखने का आदेश मिला है।

स : तुम्हें आदेश का पालन करना चाहिए।

द : चाहो तो बन्दुक से झाडू का काम ले सकता है।

ब : वियतनाम में बन्दूक से झाडू का काम किया । और सफाई हो गयी।

द : काला देश में भी यही हुआ था।

संतरी : (भौं चक्का सा) मैं तुम्हारे सुझाव पर विचार करूँगा। स्टूल पर बैठ जाता है।

ब : गम्भीर विचार–मंचन के लिए नींद का सहारा अनिवार्य है।[40]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है, परम्परागत नाटकों की तरह इसमें न नायक और नायिका। इसके संवाद उखडे और अकवि है। हुए काव्यात्मकलय से परिपूर्ण है।

6. डॉ.सत्यव्रत सिन्हा :–

"अमृतपुत्र" (1974) नाटक आधुनिक संवेदना, आधुनिक भावबंध से जुडा नाटक है।[41] यह नाटक "रोशनी एक नदी है" से साम्य रखता है। क्योंकि लक्ष्मीकांत वर्मा आदमी को रोशनी की नदी मानते हैं। जो कभी खत्म नहीं होता। सिन्हा आदमी को अमृतपुत्र कहते हैं जो कभी मरता नहीं। जो मानव कभी अमृतपुत्र कहलाता था, आज उसकी स्थिति क्या है? और सुविधा भोगी वर्ग के द्वारा आधुनिक मानवीय विसंगति को उद्घाटित करना नाटककार का मुख्य उद्देश्य है। इसमें डॉ.गोयल, खुराना, हरनामदास है।[42] इसमें मिस पाला, मिस नरूला नाटक के पात्र है। किन्तु ये सभी पात्र नपुंसक हैं।

"अमृतपुत्र" आज युवापिढी के जीवन में बहुत परिवर्तन आ चुका है। पुरानी पीढी, नयी पीढी के विचारों को स्वीकार नहीं करता और नयी पीढी पुरानी पीढी के विचारों को स्वीकार नहीं करता। आज नयी पीढी और पुरानी पीढी मे संबंध नजर आता है। आज का व्यक्ति चंचल हो गया है। वह अपनी उम्र का विचार भी नहीं करता। बूढापे में भी उन्हें स्त्री के प्रति, अभिलाषा रखते हैं। "अमृतपुत्र" नाटक के गोयल और खुराना जो बूढ है, और मिस नरूला एक बिन ब्याही बुढिया है। जो इसके बारे में उनके विचार अत्यंत युवापीढी जैसे लगते हैं। वे कहते है कि वह कितनी टिपटॉप में रहती है, वे दोनों भी उसके सौंदर्य पर रीझ जाते है। खुराना के मिस नरूला के बारे में उनके विचार –

"वैसे" मिस नरूला कोई खास बुढिया जैसी नहीं। तंदुरूस्ती अच्छी है।

गोयल : जी ।

खुराना : बनक – ठनक भी है।

गोयल : जी ।

खुराना : वाह चहक भी है।

गोयल : जी ।

खुराना : कुल मिलाकर लुभावनी है।

गोयल : (ऊंचे स्वर में) जो ?

खुराना : मेरा मतलब है कि अपनी उमर के हिसाब से ठीक ही है। कद भी अच्छा है। नाक–नक्श भी, रंग भी ढंग भी।[42]

ये सभी पात्र नपुंसक हैं, और संवाद संक्षिप्त होते हुए व्यंग्यपूर्ण हैं।

7. <u>लक्ष्मीनारायण लाल</u> :–

<u>मिस्टर अभिमन्यू</u>

मिस्टर अभिमन्यू में लक्ष्मीनारायण लाल ने मनुष्य कम समय में बहुत कुछ प्राप्त करके राजनीति में अपना नाम कमाना चाहता है, गुंडागर्दी आदिपर प्रकाश डाला है। राजन सरकारी नौकर है। वह कार्यालय में और शासन में फ़ैले भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए और उसपर काबू पाने के लिए वह केजरीवाल का गोराम और फायर आर्म्स सील कर देता है। कोर्ट से स्टे ऑर्डर मिलने पर सील तोडना पाता है। चुनाव में राजन की सहाय्यता से नेता चुन जाने के कारण उसे कलेक्टर से कमिशनर बना दिया जाता है। लेकिन वह पद क्यों मिला, इसके पीछे क्या कारण है, यह राजन जान नहीं पाता है, इसी प्रकार ये राजनीतिक नेता अपने गुणों के द्वारा किस तरह अधिकारी को चुपचाप बिठाते है इसका नमुना है "राजन"। इसी प्रकार आज का मनुष्य अभिमन्यू की तरह चक्रव्यूह में प्रवेश करता है, किन्तु वह बाहर नहीं निकल पाता। उस तरह राजन भ्रष्टाचार को समाप्त करना चाहता हे, किन्तु वह खुद उसमें फँस जाता है।[44]

<u>अब्दुल्ला दीवाना</u> :–

स्वातंत्र्यप्राप्ति के बाद राजनीति में बहुत ही परिवर्तन आया है। आज मनुष्य मनुष्य की तरह व्यवहार नहीं कर रहा है। नेताओं में भ्रष्टाचार, स्वार्थांधता के कारण समाज में लोकजीवन में हलचल मची हुयी है जिसके कारण मनुष्य का जीवन संत्रास पूर्ण बन गया है। पहले वैवाहिक संस्कार को बड़ा महत्त्व था किन्तु आज विवाह केवल पैसों का खेल बन गया है। आज विवाह केवल खिलवाड बन गया है। जो केवल यौनतृप्ति का साधन बन गया है। पत्नी न पत्नी का धर्म निभाती है और पति न पति का। इसमें बदलाव आ चुका है। अब्दुल्ला दीवाना में पिता जो एक लड़की से प्रेम करता है, और उससे अनैतिक संबंध भी जोडता है, जब उसे पता चलता है कि उसका बच्चा उस लडकी के पेट में बढ रहा है तो वह पिता उसकी शादी अपने बेटे से करना चाहता है, इसे उसका लडका भी स्वीकार करता है। लडका अपनी विचार स्पष्ट करते हुये कहता है "उसके साथ मेरी मुलाकात हो गयी। मतलब किसी के साथ जैसे मुलाकत हो जाती है, या मुलाकात करायी जाती है। हम एक–दूसरे को अच्छें नहीं लगे। लेकिन बुरा भी क्या था? "चेंज" और तफरीह के लिए अच्छे – बुरे का सवाल नहीं उठता। मेरे पास हजारों रूपये "पाकिट मनी"। डैडी कहते – "ब्लैक मनी जलाकर रोशनी करो।" मेरे पास कारें, लडकियाँ और मेरा अकेलापन जी हाँ, धन–दौलत और लडकियों के साथ अकेलापन।"[45]

नाटककार ने आज के पूँजीपती लोगों पर करारा व्यंग्य कसा है। जो अपने पैसे के बल पर लोगों को नचाते हैं, ब्याह को खिलवाड मानते हैं। यौन संबंधों की विसंगतियों पर विचार करने के लिए आज के समान को बाध्य किया है। और आज के समाज में आधुनिक स्त्री नैतिक मूल्यों को नष्ट करना चाहती हैं और एक नयी राह बनाना चाहती है।

मूलतः निर्देशक, अभिनेता, रंगकर्मी लाल के नाटक "काफी हाऊस" में इंतजार, "सूर्यमूख", "मिस्टर अभिमन्यू", "अब्दुल्ला दीवाना", "सबरंग मोहभँग" आदि नाटक लिखे है। इनके नाटक रंगमंच पर विवादास्पद रहे हैं। यही उनकी विडम्बना है।

"मि. अभिमन्यु" के द्वारा नाटककार वर्तमान मनुष्य के जीवन की त्रासदी को उजागर किया है। मनुष्य भी अभिमन्यू की तरह लड़पाने में असमर्थ है।

"सुर्यमूख" नाटक में महाभारत के युध्द के बाद कृष्ण की मृत्यू तथा द्वारिका नष्ट होने की स्थिति को लेकर रचा गया है।[46] चरित्रों की स्थूलता और भाषा की हास्यास्पद भौडी स्थिति के कारण यह नाटक हलका हो गया है।

यह स्पष्ट है कि लक्ष्मीनारायण लाल के कई सामाजिक समस्या पर प्रकाश डालने का काम किया है, किन्तु उससे कोई समाधान नहीं दिया।

8. <u>राजकमल चौधरी</u> :-

चौधरी का नाटक "भग्नस्तूप" को एक अक्षर स्तंभ है। जो असंगत शैली में लिखा है। भग्नस्तूप लेखक की देह का और 1947 के बाद के देश का भी प्रतीक है। लेखक पाठकों और प्रेक्षकों को छूट देता है कि वे इसे नाटक माने या न माने। प्रस्तुत नाटक के अधिकांश पात्र नेपथ्य में जीते हैं और रंगमंच पर आते-आते मर जाते हैं। शेष पात्र मंच पर रहकर भी नेपथ्य में जीते हैं और मंच पर आते-आते मर जाते हैं। शेष पात्र मंच पर रहकर भी नेपथ्य में ही रात्रि व्यतीत करते है। नेपथ्य यहाँ आंतरिक यथार्थ का प्रतीक है। "अक्षत स्तंभ" पूरी स्थितियों की भयावह निष्पत्ति है।[47]

9. <u>ब्रजमोहन शाह</u> :-

"त्रिशंकु" शाह का यह नाटक व्यंग्य समस्या नाटक कहा जाता है।[48] नाटककार ने युवा पिढी का सजीव चित्र चित्रित किया है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने आज के युवतीयों के फ़ैशनपर भी व्यंग्य किया है। आज नवयुवतियाँ अपना सामाजिक धर्म, संस्कृति भूल गयी है। साथ ही साथ नवयुवक दिशाहीन भटक रहे हैं। उन्हें न किसी का सहारा है, न किसी का प्रेम मिलता है। वह अपना जीवन अच्छी तरह से बिताने के लिए उसे नौकरी नहीं है, इसी कारण वह निराश है। दूसरी ओर नेता लोग है, जो अपनी कुर्सी के लिए केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। उन्हें देश

का नहीं बल्कि अपने घर परिवार की ही उन्हें चिंता है। वे धन जुटाने के लिए एक दल से दूसरे दल में प्रवेश करते हैं। त्रिशंकु एक प्रतीक के रूप में सामने आता है। समाज का, धर्म का, ईमान का प्रतीक है जो अधर में लटक रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है, नाटककार ने आज के युवापिढी जो दिशाभ्रान्त, दिशाहीन है उसी पर प्रकाश डाला है।

त्रिशंकु :- आज की शिक्षा प्रणाली केवल पुस्तकी शिक्षा देती है। केवल आध्यात्म के बारे में सोचने के लिए बाध्य करती है किंतु व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़ा कैसे किया जाय, या उसी को अपने दो वक्त की रोटी प्राप्त करने के लिए अपने परिवार का बोझ उठाने के लिए, अपनी समस्या को हल करने की शिक्षा आज आवश्यक है, इसी का अभाव आज नजर आता है। आज छात्र एम.ए. की डिग्री लेते है किन्तु उसका अपने जीवन में कुछ फायदा नहीं है यह जानते हुये भी वह इसी रास्ते पर चलते है। "त्रिशंकु" नाटक में एक युवक, जो एम.एस्सी, एम.ए. पास की है किन्तु उसे नौकरी नहीं मिलती। थियेटर में उसे नाटक का पात्र बनने से भी उसे नकारा जाता है। बाद में वह कुली का काम करता है, वह उस सामान को उठाता है परंतु वह सामान गिर जाता है। कोई उसकी मदद नहीं करता। इस प्रकार आज युवा पिढी, केवल परीक्षार्थी हो गये हैं। वे नौकरी पाने के लिऐ दर दर भटकते हैं। किन्तु उन्हें नौकरी नहीं मिलती। इसी कारण आज की युवा पिढी, अन्य भ्रष्ट जीवन को स्वीकार करके अपना जीवनज्ञापन करती है। नाटककार ने बेकारी की समस्या पर प्रकाश डाला है। मणि मधुकर के नाटक रसगंधर्व में चुनाव, मतगणना, अफसरों की कूटनीतिज्ञता पर कठोर प्रहार किया है।

राह ये मात :-

यह कथाविहीन नाटक है।[50] नाटककार ने अपने नाटकों में अतीत की असफलताओं की कुण्ठा उग्र वर्तमान और अनिश्चित भविष्य में जीते मनुष्य की प्रतिक्रियाओं को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत नाटक में कप्तान, औरत, आगंतुक, लडका और लड़की है, इसी के द्वारा नाटककार ने आराजकता मे जी रहे पात्रों को चित्रित किया। लडका आदर्शवादी, ईमानदार, निर्भिक भावुक, युवावर्ग का प्रतीक है जो समाज में व्याप्त अर्थहीन और भ्रष्ट तत्वों से टूट चुका

है। पूरा नाटक एक ही दृश्यबंध पर घटित होता है। प्रस्तुत नाटक में मुरझाया हुआ पेड आधुनिक मानव की मुरझाई हुई आशा–आकांक्षाओं का प्रतीक है। मुर्गी हत्यारे मानव की उग्र आकांक्षाओं का प्रतीक है।[51]

ब्रजमोहन शाह का "राह ये मात" में कप्तान अपनी पत्नी के चरित्र के प्रति शंका और बिमारी के कारण वह अस्वस्थ हो गया है। बिमारी की वजह से वह कभी–कभी अकेले ही हँसता तो कभी पागलों जैसी हरकतें करता है। इसी कारण उसकी पत्नी दु:ख, निराश, परेशान है। रिटायर होने के बाद भी वह बीमार है, किन्तु, वह सबको यह बताता है – "लगा लो शर्त, मैं एव्हरेस्ट पर्वत पर चढ़ सकता हूँ। दक्षिण पश्चिम से, और चढूँगा क्यों?[52]

विवाह के पूर्व जब लडकी किसी बच्चे को जन्म देती है, या गर्भ धारण करती है, तो समाज में इसे कोई स्थान नहीं होता। वह समाज के लिए एक कलंक माना जाता है। इसीका दोष उसके परिवार को दिया जाता है। प्रस्तुत नाटक में कप्तान जिस लडकी से प्रेम करता है वह कद में छोटी है, किन्तु कप्तान से बडी। कप्तान का गर्भ उसके पेट में बढने लगा, कोशिश करने पर भी उसकी प्रेमिका नदी में डूब गयी। वह अंत तक उसे भूल नहीं जाता। आज इसी समस्या को हल करने के लिए नयी तरकिबे निकाली गयी है।

10. **रमेश बक्षी :–**

रमेश बक्षी एक प्रयोगशील नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। आप का "देवयानी का कहना है" नाटक सामाजिक मान्यताओं को तोड़ता हुआ विवाह संस्था पर एक प्रश्न चिह्न लगाता है। यह नाटक युवा पिढी की स्वच्छन्द प्रवृत्ति पर आधारित असंगत नाटक है जिसमें कथानक नहीं है।

"देवयानी का कहना है" की नायिका जो प्राचीन परंपराओं के घिरे बंधानों से नफरत करती है और अपना एक नया रूप उपस्थित करना चाहती है। वह एक साहसी युवती के रूप में सामने आती है और समाज में स्वतंत्रता चाहती है। वह साधन से पूर्व संपर्क में आये पुरूष को वह

13619

खिलौने की तरह नचाती है। वह स्त्री–पुरूष में स्वतंत्रता चाहती है। उसका विवाह पर विश्वास नहीं है। अविवाहित बिस्तर–बाजी में खर्च अधिक है, डर ज्यादा है। विवाह का सर्टिफिकट मिल जाये तो नपे–तुले खर्च में सुबह से रात के सारे काम हो जाते हैं।[53] उसका विवाह साधन से हो जाता है, वह जब साधन को चाय पिलाती है तो वह उसे चाय के पैसे माँगती है। वे एक ही कमरे में अलग–अलग रहते हैं। साधन जब उसके पास जाता है तो वह साधन को वेश्याओं की तरह पैसे माँगती है। यहाँ नाटककार ने दिशाभ्रान्त हो रही युवापिढी को दिखाया है जो अलग अस्तित्व रखना चाहती है। साथ ही साथ युवापिढी की दायित्व हीनता और उलझी मनस्थिति पर भी प्रकाश डाला है।

आधुनिक युग मे जब बच्चा या बेटी पैदा हो जाती है तो उस पर प्राचीन रूढियों को थोपा जाता है। और पुरानी बेडियों में बाँधना चाहते है। किन्तु नयी पिढी इस प्राचीन बेडियाँ तोडना चाहती है। "देवयानी का कहना है" नाटक में लडकी देवयानी जो अपने माता–पिता से कभी प्रेम नहीं पा सकी। उनके पिता देवयानी को भारतीय संस्कृति से अवगत कराना चाहते है। इसलिए वे उसे उपनिषद, संस्कृत, वेद, आदि के बारे में शिक्षा देते हैं, उसे पढ़ाते हैं। किन्तु वह उस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकी। वह अपने पिताजी के इस कार्य से नाखूश होती है। वह अपने पिता का आदर नहीं करती। देवयानी परंपरा के खिलाफ है। वह रेखा से कहती है – "देखिए रेखाजी, मैं शुरू से ही खुले दिमाग की रही हूँ। एक उम्र के बाद मुझे लगा कि जीवन में किसी का होना जरूरी हैं। तभी साधन से मुलाकात हो गयी। हो सकता है कि विधिवत शादी हो जाती, साधन बारात लेकर आता, सेहरा पढा जाता और सारे नाटक होते, लेकिन उसके लिए हमें समय नहीं मिला।"[54]

इसी प्रकार नयी पिढी पुराने विचारों को तोडकर अपने नये विचारों के साथ अपना जीवन ज्ञापन करती है। साथ ही साथ युवापिढी की दायित्व हीनता और उलझी मनस्थिति पर प्रकाश डालते हैं।

रमेश बक्षी का "तीसरा हाथी" नाटक दो वर्गों में विभाजित है। जिसमें भारतीय मध्यमवर्गीय परिवार को चित्रित किया है। नाटक के पात्र विद्रोही के रूप में नजर आते हैं। सबसे महत्वपूर्ण पात्र पिता, जो रंगमंच पर नहीं है फिर भी पूरे नाटक पर छाया हुआ है।[55] सभी उसकी मृत्यू की राह देख रहे हैं। उसका बेटा रोशन आत्महत्या करता हैं। बडा लडका मोहन अपने पुरूषत्व को खो चुका है। नाटक के सभी पात्र अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जीते हैं। यहाँ नाटककार ने युवापिढी के आक्रोश को व्यक्त किया है। पिता की मृत्यू की राह देखने वाले सभी पात्रों। पिता मरता है और वहीं घर के छत पर चुने सिमेंट से बना विशालकाय जर्जर हाथी गिर पाता है।

नाटक में प्रकाश और ध्वनियोजना का सफल प्रयोग हुआ है। भाषा में नाटकीयता है। नाटक के पात्र प्रारंभ से अंत तक कुछ होने की संभावना रखते है लेकिन कुछ घटित नहीं हो पाता।

रमेश बक्षी का नाटक "वामाचार" आपातकालिन स्थिति को उजागर करता है। इसमें दो पात्र है, निगेटिव्ह और पॉझिटिव्ह। पॉझिटिव्ह भ्रष्टाचार को भ्रष्टाचार से काटना चाहता है। निगेटिव्ह घृणा चिंता से भरा हुआ है। वह नंगी भाषा में गाली-गलौज और कडवाहट भरी भाषा में बोलता है।[56] नाटक में समाज में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक संबंधों की मर्यादाहीन स्थिति का चित्रण किया और भाषा भावों के अनुकूल है।

रमेश बक्षी के नाटकों में भय, रहस्य, यौनसंबंध, भ्रष्टाचार के अनुभव देखने को मिलते हैं। डॉ. सत्यव्रती त्रिपाठी के अनुसार – "रमेश बक्षी ने अपने पहले के और समकालिन नाट्यकारों – मोहन राकेश, सुरेंद्र वर्मा, मुद्राराक्षस आदि की अपेक्षा कहीं अधिक खुले और बेबाक ढंग से आधुनिक समाज की वर्जनाहीनता और उन्मुक्त यौन संबंधों का चित्रण किया है। वे वर्जनाओं को तोडने में हिंदी नाट्यकारों में सबसे आगे दिखायी पडते हैं। उनके पात्रों के आचारण और भाषा दोनों में नैतिकता के प्रचलित मानदंडो को तोडने का प्रबल आग्रह है। यह आग्रह उनके नाटकों की

वस्तु और शिल्प दोनों में उत्कट रूप में व्यक्त हुआ है, जो नये प्रयोगों की दृष्टि से उल्लेख्य है।[57]

11. **रामेश्वर प्रेम :-**

हिन्दी की विसंगत नाट्य परंपरा में रामेश्वर प्रेम का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका (1983) "काच" नाटक में आपने युध्द की परिस्थितियों को चित्रित किया है। युध्द का परिणाम केवल जो युध्द करते हैं उनपर ही नहीं बल्कि सारे समाज पर होता है।

आपका "अजातघर" नाटक एक महत्वपूर्ण नाटक है। इसमें आपने व्यक्तिवाचक संज्ञा के बजाय जाती वाचक संज्ञा का प्रयोग किया है। इसमें प्रथम पुरूष, द्वितीय पुरूष है और लडकी।[58] शहर में दंगे हो जाने के कारण दोनों अपने प्राणों को बचाने के लिए वे एक "अजातघर" का आश्रय लेते हैं। लेकिन वे एक-दूसरे अपनी जाती पूछते नहीं। वे लडते झगडते है। प्रथम पुरूष, द्वितीय पुरूष से जाती पूछता है किन्तु वह बताता नहीं। वे एक दूसरे के लिए सहारा भी है। वे अपनी जाती नहीं बनाते क्योंकि वे यह भी नहीं जानते कि वे जिस घर में है वह किस जात का है।

सर्वेश्वर दयाल के अनुसार - रामेश्वर प्रेम का यह पहला नाटक अजात घर जिस नाटकीय स्थिति से उपजता है वह और उसके पीछे समाज की समस्याओं से सही दृष्टि से टकराने की जो बेचैनी है वह जिस तरह सामने रखता है, सराहनीय है।

चारपाई - चारपाई नाटक में भी कथानक का अभाव है। जिसमें नाटककार ने मध्यमवर्गीय परिवार का चित्र अंकित किया हैं। तंग मकान में पडी एक चारपाई और कपडों के गठ्ठर मध्यमवर्गीय परिवार की जखडन और पुराने मूल्यों की न बदल पाने की स्थितियों को अंकित करता है।[59] नाटक के पात्र वृध्द शील, छोटू पुरूष, माँ, बहू, सभी संवाद हीनता की स्थिति में जीते हैं।

डॉ.त्रिपाठी के अनुसार – गठ्ठर चारपाई, दस्तावेज क्रमशः कहीं घर की अपनी पुरानी मान्यताओं के तहत अर्धनिर्मित वर्तमान से और कहीं इन सबों के गुणनफल से जुडते गये और है। छोटू इन्ही साधनों और चरित्रों से निर्मित वर्तमान है जिसके ऊपर भविष्य निर्भर करता है। चारपाई के नीचे अनने दादा की अधजली बॅाडी चोरी से फूॅकते हुए वह सबसे नीचे भ्रूणस्थ है। इस वर्तमान के ऊपर बहुत बोझ है, घर के अन्य लोग अपने–अपने समय के साथ जीवित है। वास्तव में मेरे लिए चारपाई किसी व्यक्ति विशेष के जीवन की वास्तविक घटनाओं कायथार्थ नहीं है, बल्कि चरित्रों के जरिए उनके सामाजिक डायलाग की तलाश है।[60]

प्रस्तुत नाटक में गठरी और चारपाई प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किये है।

"अंतरंग" (1985) नाटक अतीत के माध्यम से वर्तमान की कहानी है।[61] इसमें नाटककार ने जनता और सत्ता के बीच में जो दरार पडी हुई है, जिसके के कारण मानव जीवन असंतुलित हुआ है। साथ ही साथ यह नाटक राजनीतिक सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर भी प्रकाश डालता है।

12. <u>सुदर्शन मजीठिया</u> :–

सुदर्शन मजीठिया का "चौराहा" (1986) एक महत्वपूर्ण असंगत नाटक के रूप में सामने आता है। प्रस्तुत नाटक आधुनिक रंगमंच और लोकमंच, नुक्कड नाटक और असंगत नाटक का मिलाजुला रूप है। अपने कथ्य, शिल्प भास और प्रयोग–धर्मिता के कारण यह नाटक लोगों का ध्यान आकर्षित करता है। नाटक में छः व्यक्ति और एक महिला ही स्थितियों के अनुरूप विभिन्न पात्रों का रूप धारण कर लेते है। न पात्रों का यहाँ कोई परम्परागत रूप है, न कथानक जैसी चीज, बल्कि कथाहीनता, बदलती हुई परिस्थितियों, दृश्यों, संदर्भों और उनमें जोकर की रचनात्मक भूमिका के द्वारा नाटक विकसित किया गया है। नाटक सारे देश और समाज के उस चौराहे पर खड़ा दिखता है जहाँ दिशाहीनता, गतिहीनता, भ्रष्टाचार, चारित्रिक पतन तो है ही सबसे अधिक भयानक स्थिति है हम सबका एक अति रचनात्मक मनःस्थिति के दबाव में चलना और इस तरह एक अभिशप्त नियति और संदिग्धता से गहराते कोहरे में से गुजरते जाना। पुराने विश्वासों और

नये वैज्ञानिक आविष्कारों, बेकारी, रिश्वतखोरी, आर्थिक संकट, प्रामाणिकता के अभाव में, आजाद भारत में निरन्तर हस्तक्षेप करते राजनीतिक हथकण्डों में मनुष्य को मात्र एक पदार्थ बना दिया है इस कथ्य को नाटककार ने यहाँ असंगत शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि "चौराहा" लचीला, व्यंजनापूर्ण तेज गति और मूल्यों के अन्वेषण का नाटक है।[62]

13. <u>हमीदुल्ला</u> :–

हमीदुल्ला एक युवा और प्रयोगशील नाटककारों में से एक है। उनके "उलझी आकृतियाँ" में तीन नाटक है। समय संदर्भ, एक और युध्द, उलझी आकृतियों। तीनों नाटकों में व्यंग्य कसा हुआ है।

<u>समय सन्दर्भ</u> – में नाटककार ने आज के मशीनी जीवन में मनुष्य भी मशीन बन गया है। उसमें किसी प्रकार की भावना नहीं नजर आती। यहाँ मानव जीने के लिऐ संघर्ष करता है। मशीनी ज़िंदगी के कारण वह अपना अस्तित्व भूल चूका है। इसी मशीनी के कारण मनुष्य का जीवन सफल बन गया है। किंतु यही मशीनी एक दिन सबको मिटा देगी। इसी कारण मशिनी जिंदगी मनुष्य के जीवन को खतरा बन सकती है। मानव वैज्ञानिक बोझ का कथन है – "मशिनी मानव, मशिनी मानव, मशिनी मानव। तंग आ गया हूँ सुनते–सुनते। मैं नहीं जानता था कि आदमी का यह निर्माण एक दिन खुद उसे बेवकूफ बना देगा।[63] संवादों को दृष्टि से देखा जाय तो, छोटे–छोटे संवाद है तो मानव जीवन के खोखलेपन को व्यक्त करते है।

<u>एक और युध्द</u> :– हमीदुल्ला का यह नाटक प्रयोगात्मक है।[64] इसमें नाटककार ने समाज में व्याप्त वर्तमान जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है। इसमें कथावस्तु सुसम्बध्द नहीं है। ओर एक ही पात्र छः भूमिकाओं में काम करता है।

<u>उलझी आकृतिय़ाँ</u> :– प्रस्तुत नाटक का केंद्र दफ्तर है। इसमें नाटककार ने सरकारी कार्यालय के कर्मचारीयों की निष्क्रीयता, स्वार्थ, अवसरवादिता ओर मानवीय मूल्यों के ऱ्हास और भ्रष्ट वातावरण में मनुष्य की यांत्रिक जिंदगी का करूण चित्र खींचा है। इसमें संवाद संक्षिप्त पुश्त और सम सामायिक युग को उसकी अव्यवस्था, विसंगत परिवेश और अमानवीय नीति के साथ मूर्त करने में सक्षम है।

<u>दरिन्दे</u> :– (1975) नाटककार ने इसमें (दरिन्दे) बढती, अवसरवादिता, स्वार्थांधता भ्रष्टाचार तथा राजनेताओं की छल नीति पर व्यंग्य कसा है। इसमें संवाद व्यंग्यपूर्ण और एब्सर्ड नाटकों की तरह उलजलूल प्रयोग से गहरा अर्थ उत्पनन् करने में सक्षम है। नाटककार पशु के माध्यम से मानव जीवन पर प्रहार किया है। शेर, भालू, को हम खूँखार कहते हैं, किन्तु इनसे भी खूँखार प्राणी है मनुष्य । जो आज स्वार्थांधता में डूबा हुआ है। जिसके कारण वह अपना धर्म., निजी प्रेम सबकुछ भूल गया है। इसी कारण मनुष्य एक तुच्छ, हीन प्राणी बन गया है।

नाटककार ने अपने नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है उनके नाटकों में व्यंग्य है, करूणा है और गम्भीरता। साथ ही साथ बदलते मूल्यों पर भी प्रकाश डाला है।

दरिन्दे नाट्यसंग्रह में, घर बन्द, दूसरा पक्ष, अपना अपना दर्द एकांकी है , किन्तु परिन्दे से ही नाट्य लेखन की दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है।

<u>दूसरा पक्ष</u> :– इसमें नाटककार न अभिजात्य वर्ग की कलुषता और मनमानी हरकतों और उनमें छिपी पाशविकता को उजागर किया है।

<u>घर बन्ध</u> :– इसमें नाटककार ने देश में होनेवाली हडतालों और बन्द पर व्यंग्य कसा है।

<u>अपना अपना दर्द</u> :– इसमें नाटककार ने माता पिता की सन्तान के प्रति हृदय हीन्ता, वर्तमान, समाज की स्वार्थपूर्ण छलपूर्ण अवसरवादिता का अंकन किया है। वर्तमान परिवेश की विसंगतियाँ और उनके बीच संघर्ष में टूटता एकाकी मनुष्य ही इसका केंद्रबिंदु है।

14. डॉ.सुरेशचन्द शुक्ल "चन्द्र" :–

सुरेशचंद्र बहुविध नाटककार है।[65] इनका "कुत्ता" प्रतीकात्मक नाटक है जो असंगत नाटक शैली में आता है। इसमें उन्होंने अनैतिकता के कारण समाज में दुष्परिणाम नजर आ रहे है। आज कि स्त्री कुछ स्त्रियाँ अपनी परिस्थितियों का सामना भी करती है। तो कुछ स्त्रियाँ में परिस्थितियों क सामना करने की शक्ति भी नहीं होती। आज स्त्री भी नौकरी करती है। नौकरी करते समय उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पडता है। अगर वह अपने अधिकारी, बॉस का मन नहीं जीत पाती तो उसे अपनी नौकरी से हाथ धोना पडता है। इसी कारण आज की आधुनिक नारी अनेक परेशानियों के कारण वह बिलकुल टूट चुकी है। वह सदैव पुरूष के अधीन रहती है। प्रस्तुत नाटक में "कुत्ते" प्रतीकात्मक शब्द है जिसका तात्पर्य उस मानवीय प्रवृत्ति से है, जो समाज में सभ्य पुरूष के रूप में रहते हैं, पर उनकी प्रवृत्ति "कुत्ते" की तरह नारी शरीर पर लोलुप दृष्टि डालने की होती है। इस नाटक में राका, अभा, रीना यह तीन स्त्रियाँ है जो नौकरियाँ करती है।

राका जो है वह ऑफिस के माहोल से तंग आ चुकी है इसलिए वह नौकरी छोड देती है। दूसरी अभा वह अपने ऑफिस में बॉस व्यक्तियों से बचकर टीट फॉर टॅट जिसे मराठी में "जशास तसे" के तंत्र को अपनाती है। मिस रीना जो इन दोनों से अलग है, वह अपने आपको समर्पित करती है, और नौकरी में आगे बढती है। अभा, राका का कहना है – ऐसे ही उपाय खोजने पडते हैं इन कुत्तों को यदि बहुत पुचकारोगी तो मुँह चाटेंगे ओर यदि ज्यादा दुत्कारोगी तो नुकसान पहूँचाऐंगे। इन्हे बस "तू" और "धत" में बदलाये रहे। मूर्ख कुत्ते है, इन्हें रोटी से ज्यादा प्रिय है, मॉस का टुकडा। दूर से दिखाए बस पूँछ हिलाते रहेंगा।

डॉ.चन्द के अनुसार – "ऊपर से मुस्कुराट ओर अपने को सुज्जित रखने वाली महानगरीय नारी, भीतर से अत्याधिक खोखली और संत्रास्त है। वह अपनी अंतहीन यात्रा में गहन टूटन का अनुभव कर रही है। इस नारी की तरह ही यह नाटक भी ऊपर से रोचक और भीतर से वेदना युक्त है। उपर्युक्त राका का कथन आज के पुरूष और बॉस प्रवृत्तियों पर करारा व्यंग्य कसती है।

असंगत नाटक है क्या ? इस पर विचार करते हुये उसके स्वरूप को संक्षेप में देखते है। उसकी कथ्य, पात्र, संवाद, उद्देश्य की विशेषताएँ देखी। इस प्रकार यहाँ हमने असंगत नाटक का पश्चिम में विकसित होता हुआ रूप देखते हुये वहाँ के नाटककारों का परिचय किया। इसके उपरांत हिंदी में यह धारा कैसे विकसित होती गयी और इस धारा में आये प्रमुख नाटककार और उनके प्रमुख नाटकों का संक्षेप में विवेचन किया है।

संदर्भ :-

1. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.28

2. डॉ.दशरथ ओझा – आज का हिंदी नाटक प्रगति और प्रभाव, प्र.सं.1984, पृ.43

3. संपा.नरनारायण राय – असंगत नाटक और रंगमंच (मणि मधुकर – निसंग होती दुनिया के असंगत नाटक – लेख), पृ.17

4. वही, पृ.19

5. संपा.नरनारायण – असंगत नाटक और रंगमंच (मदन मोहन माथुर – असंगत नाट्य शैली – लेख), पृ.57

6. वही, पृ.61

7. सं.डॉ.विजय कांत घर दुबे – साठोत्तरी हिंदी नाटक, प्र.सं.1983, पृ.46

8. वही, पृ.74

9. संपा. सत्यप्रकाश एवं बलभद्र प्रसाद मिश्र – मानक अँगेजी हिंदी कोश, प्र.सं.1991, पृ.7

10. संपा. (प्र) रामचंद्र वर्मा – मानक हिंदी कोश, पहला खंड, प्रथम सं.1965, पृ.220

11. वही (पाचवा खंड) पृ.99

12. जयवंत रघुनाथ जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.43

13. संपा.नरनारायण – असंगत नाटक और रंगमंच (डा.सत्यव्रत सिन्हा – विसंगति का नाटक), प्र.सं.1981, पृ.46

14. वही, पृ.50

15. संपा.नरनारायण राय – असंगत नाटक और रंगमंच (मदन मोहन माथुर – असंगत नाट्य शैली) प्र.सं.1981, पृ.57

16. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशील, प्र.सं.1995 पृ.31

17. Dr. J. N. Mundra & Dr. S. C. Mundra, A History of English Literature vol. III, Edition 1987, Page 595.

18. डा.जयदेव तनेजा – हिंदी रंगकर्म – दशा और दिशा, प्र.सं.1988, पृ.

19. डॉ.जे.डी.शर्मा, "मनोविज्ञान की पध्दतियाँ एवं सिध्दांत" षष्ठ सं.1991, पृ.314

20. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.22

21. वही, पृ.23

22. संपा.नरनारायण राय – असंगत नाटक और रंगमंच (डॉ.नरनारायण – असंगत नाटक और जीवन संदर्भ लेख) प्र.सं.1981, पृ.77

23. वही, पृ.127

24. डॉ.अज्ञात – भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास ,प्र.सं.1978, पृ.84

25. संपा.नरनारायण राय – असंगत नाटक और रंगमंच (कमलेश्वर – असंगत नाटक : युध्दों के अवशेष और दस्तावेज लेख) प्र.सं.1981, पृ.14

26. डॉ.रामसेवक सिंह – एब्सर्ड नाट्य परंपरा, प्र.सं.1970, पृ.109

27. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.44

28. डॉ.सत्यवती त्रिपाठी : आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र.सं.1991, पृ.121

29. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.126

30. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.45

31. डॉ.श्रीमती रीताकुमार – स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में,

प्र.सं.1980, पृ.54

32. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.43

33. डॉ.जयश्री शुक्ला – साठोत्तरी हिंदी नाटकों की सामाजिक चेतना, प्र.सं.1994, पृ.188

34. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.132

35. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.45

36. संपा.नरानारायण राय – असंगत नाटक और रंगमंच (डॉ.चन्द्र – असंगत हिंदी नाटक और रंगमंच लेख) 1981, पृ.131

37. वही, पृ.137

38. डॉ.सत्यव्रती त्रिपाठी – आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र.सं.1991, पृ.131

39. वही, पृ.132

40. संपा.नरनारायण राय – असंगत नाटक और रंगमंच (डॉ.चन्द्र – असंगत हिंदी नाटक और रंगमंच लेख) प्र.सं.1981, पृ.137–138

41. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.47

42. डॉ.सत्यवती त्रिपाठी – आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र.सं.1991, पृ.143

43. डॉ.जयरी शुक्ला – साठोत्तरी हिंदी नाटकों की सामाजिक चेतना, प्र.सं.1994, पृ.110

44. वही, पृ. 172

45. वही, पृ.53

46. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.55
47. डॉ.सत्यवती त्रिपाठी – आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र.सं.1991, पृ.145
48. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.192
49. डॉ.जयश्री शुक्ला – साठोत्तरी हिंदी नाटकों की सामाजिक चेतना, प्र.सं.1994, पृ.152
50. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.194
51. डॉ.दशरथ ओझा – आज का हिंदी नाटक प्रगति और प्रभाव, प्र.सं.1984, पृ.97
52. डॉ.जयश्री शुक्ला – साठोत्तरी हिंदी नाटकों की सामाजिक चेतना, प्र.सं.1994, पृ.71
53. देवयानी का कहना है – पृ.26
54. डॉ.जयश्री शुक्ला – साठोत्तरी हिंदी नाटकों की सामाजिक चेतना, प्र.सं.1994, पृ.96
55. डॉ.सत्यवती त्रिपाठी – आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र.सं.1991, पृ.137
56. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.152
57. डॉ.सत्यवती त्रिपाठी – आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र.सं.1991, पृ.140
58. वही, पृ.41
59. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.51
60. डॉ.सत्यवती त्रिपाठी – आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र.सं.1991, पृ.142–143
61. जयवंत रघुनाथराव जाधव – मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन, प्र.सं.1995, पृ.51

62. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.214–215

63. हमीदुल्ला – उलझी आकृतियाँ (समय सन्दर्भ) प्र.सं.1973, पृ.44

64. डॉ.गिरीश रस्तोगी – समकालिन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, प्र.सं.1990, पृ.157

65. डॉ.जयश्री शुक्ला – साठोत्तर हिंदी नाटकों की सामाजिक चेतना, प्र.सं.1994, पृ.46